



March, 2010

भारतीय परम्परा में चेतना की संकल्पना एवं उसकी शैक्षिक उपादेयता



* डॉ. अशोक कुमार सिडाना * *रेवत सिंह

* * * सच्चिदानन्द तिवारी

*प्रोफेसर, श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय, सी.टी.ई. केशव विद्यापीठ, जामडोली, जयपुर
* * * प्रवक्ता श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय, सी.टी.ई. केशव विद्यापीठ, जामडोली, जयपुर

चेतना भारतीय चिन्तन परम्परा का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। भारतीय दर्शन की तत्व मीमांसा में मूलतत्त्व के स्वरूप, उसके आकार-प्रकार आदि का लेकर गहन चिन्तन किया गया है तथा इसकी ज्ञान मीमांसा के अन्तर्गत इसी मूल तत्व के ज्ञान के तरीके एवं मानवीय ज्ञान की सीमा एवं प्रमाणिकता आदि को लेकर विषद् चर्चा की गयी है। किसी चिन्तन से पूर्व हमें एक चिन्तनशील सम्पन्न सत्ता को मानना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि यह चिन्तन की आवश्यक पूर्ववर्ती शर्त है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यह जो भी चिन्तन शक्ति सम्पन्न सत्ता है इसका वास्तविक स्वरूप क्या है? इसकी कोई अपनी स्वतन्त्र सत्ता है या यह अपनी सत्ता के लिए किसी अन्य पर निर्भर है? यह भौतिक है या अभौतिक? चिन्तनशक्ति जिसे आवश्यक रूप से चेतना से व्याख्यापित करने का प्रयास अधिकतर भारतीय चिन्तक करते हैं। यह कुछ तत्वों से मिलकर बना है अर्थात् कार्य है या आदि कारण स्वयं मूलतत्त्व है, या न कारण है न कार्य बल्कि स्व प्रकाशता या स्वयं में चेतना सदैव किसी वस्तु की होती है या इससे अलग इसका सपना कोई निजी स्वरूप है? चेतना सदैव किसी वस्तु की होती है या इससे अलग इसका सपना कोई निजी स्वरूप है? चेतना किसी वस्तु, पदार्थ या आत्मा का स्वरूप या आगन्तुक गुण है या इनसे भिन्न इसकी अलग सत्ता है? इन प्रश्नों पर भारतीय दर्शन में अत्यन्त व्यापक तर्कपूर्ण एवं गहन चिन्तन तथा सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है। आधुनिक दृष्टि से विचार किया है। मेडिकल साइंस ने भी कोशिका की संरचना से लेकर उसके विस्तार एवं विकास का एक अति सूक्ष्म वैज्ञानिक अवलोकन किया है। परन्तु इन सभी वैज्ञानिक अध्ययनों ने हमें यही बताने का प्रयास किया है कि जो विद्यमान जड़ या चेतन तत्व क्या है वह कैसे कार्य करता है? उसके गुण धर्म क्या है? उसकी उपयोगिता क्या है? उसके मूल तत्त्व क्या है? आदि। परन्तु भारतीय दार्शनिक दृष्टि इन प्रश्नों पर दूसरी तरह से विचार करती है। यहाँ मूल प्रश्न यह उपस्थित होता है कि चेतना के मूल में क्या है?

इसका स्वरूप क्या है? क्या इसके पीछे भी कुछ है? वह जो कुछ है उसका आधार क्या है? उसका ज्ञान कैसे सम्भव है तथा जगत् एवं व्यापक मानवीय कल्याण में उसकी क्या भूमिका है? उपनिषद् इस बात

का प्रतिपादन करते हुए स्पष्टतः कहते हैं। वह क्या है, जिसके जानने के बाद कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रह जाता है, जिसको पी लेने के बाद कुछ पाने योग्य शेष नहीं रह जाता है।

परन्तु पाश्चात्य वैज्ञानिक दृष्टि, भौतिकवादी दर्शन, उपभोक्तावादी दर्शन, संस्कृति एवं आधुनिक मनोविज्ञान ने सदैव ही भारतीय दार्शनिक चिन्तन को रूढ़िवादी, परम्परावादी, आध्यात्मिक एवं काल्पनिक कहकर इसकी उपेक्षा की। परन्तु आज जब उपभोक्तावादी संस्कृति की इस होड़ में मनुष्य स्वयं उपयोग की वस्तु बनता जा रहा है एवं अपनी पहचान खोता जा रहा है। तो उसे एक नई दृष्टि की आवश्यकता है, जिसकी सशक्त सम्भावना उसे भारतीय चिन्तन एवं दर्शन की समृद्धिशाली परम्परा में दिखाई दे रही है। भारतीय दर्शन की विविध परम्पराओं में चेतना के विविध आयामों पर अत्यन्त तर्कपूर्ण ढंग से अपना-अपना पक्ष रखा है जिस पर क्रमशः अत्यन्त संक्षेप में प्रकाश डालना यहाँ आवश्यक हो जाता है। भारतीय दर्शन में सबसे पहले हम चार्वाक दर्शन को लेते हैं जो मूलतः भौतिकवादी है। चार्वाक के मतानुसार पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि- ये चार महाभूत ही मूल तत्व हैं। शर्मा 1986, 1991। इन चार तत्वों के विविध अनुपातों में विविध सम्मिश्रण होने से वाह्य जगत्, भौतिक शरीर, इन्द्रियाँ आदि उत्पन्न होती हैं। चैतन्य भी भौतिक तत्वों के सम्मिश्रण से जीवित शरीर में उत्पन्न होता है, अतः जीवित शरीर से भिन्न कोई आत्मा नहीं है। अन्वय एवं व्यतिरेक दोनों से यह सिद्ध है। इस प्रकार चार्वाक चेतना को भौतिक तत्वों के उत्पाद के रूप में स्वीकार करते हैं।

इसमें भिन्न इस विषय में एक दूसरी दृष्टि हमें जैन एवं न्याय दार्शनिकों की दृष्टिगत होती है। जिसके अनुसार चेतना आत्मा का गुण है। जैन दर्शन के अनुसार जीव चेतन द्रव्य है। चैतन्य जीव का स्वरूप लक्षण है-चैतन्य लक्षणों जीवः। प्रत्येक जीव स्वरूप से अनन्त चतुष्टय सम्पन्न माना गया है। कर्मफल से सम्पुक्त होने के कारण बद्ध जीवों पर कर्म का आवरण पड़ जाता है। जिससे उनमें उपर्युक्त स्वरूप धर्मों का प्रकाशन नहीं होता है। इन गुणों के तारतम्य के कारण जीवन के अनन्त भेद हैं। सम्पूर्ण लोक जीवों से भरा पड़ा है, किन्तु जीवों में लाइबनिज के चिद्गुणों से समान गुह्यसत्त्वक भेद नहीं है, केवल मात्रा भेद है।

सबसे निकृष्ट जीव एकेन्द्रिय है जो भौतिक जड़ तत्व में रहते हैं तथा निष्प्राण एवं अचेतन प्रतीत होते हैं। किन्तु सर्वोत्कृष्ट जीव मुक्त जीव हैं, जिनमें आवरणीय कर्मों के क्षय के कारण अपना स्वरूप शुद्ध रूप से प्रकाशित होता है और जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द सम्पन्न है। जैव दर्शन जीव को ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता मानता है। ज्ञान जीव का स्वरूप गुण है। अतः वह स्वाभाविक रूप से ज्ञाता है। जीवन कर्मों का वास्तविक कर्ता है और इसीलिए कर्मफलों का वास्तविक भोक्ता भी है। जीव भौतिक शरीर, इन्द्रिय, मन आदि से भिन्न है। आकाश में जीव का विस्तार दीपक के प्रकाश के समान है। जैसे कई दीपों का प्रकाश एक साथ रहता है, उसी प्रकार कई जीव बिना टकराये आकाश में स्थित रहते हैं। स्वयं अरूपी होते हुए भी जीव अपने शरीर के रूप में परिणाम को धारण कर लेता है। वह न विभु है और न अणु वह शरीर परिमाण ही है। चींटी के शरीर के बराबर और हाथी का जीव हाथी के शरीर के बराबर होता है।

जैन मत से सूक्ष्म भिन्नता रखते हुए न्याय, वैशेषिक, चेतना को आत्मा का आगन्तुक गुण मानते हैं। आत्मा, मन एवं इन्द्रियों से संयुक्त होकर ही विषय का ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार न्याय वैशेषिक आत्मा को जड़ द्रव्य के समान ज्ञेय या विषय के रूप में मानते हैं तथा ज्ञान को उसका आगन्तुका गुण मानते हैं। इसके सम्बन्ध में भारतीय दर्शन का तीसरा महत्त्वपूर्ण मत सांख्य एवं अद्वैत वेदान्त का रहा है जो चेतना एवं आत्मा में ऐक्य स्थापित करता है। आत्मा स्वचेतन स्वीकार कर द्वैतवाद की स्थापना करता है। पुरुष चेतन तत्व है जो शुद्ध द्रष्टा है वह न तो कर्ता है न ही भोक्ता, वह नित्य मुक्त है। बन्धन एवं मुक्ति प्रकृति का ही होता है। चेतना के सम्बन्ध में भारतीय चिन्तन में इनसे भिन्न एक अन्य दृष्टि बौद्धों में भी दृष्टिगत होती है, जो चेतना को अविरल प्रवाह के रूप में स्वीकार करते हैं। ये अनात्मवादी हैं, किसी आत्म तत्व को स्वीकार नहीं करते। परन्तु चेतना एवं अविद्या को बौद्ध दार्शनिक स्वीकार करते हैं। अविद्या के कारण जीव जन्म-मरण चक्र में घूमता रहता है। अविद्या निवृत्ति ही निर्वाण है।

उपनिषद् दर्शन में भी चेतना पर व्यापक विचार हुआ है। उपनिषदों में चेतनाका आत्मा की चार अवस्थाओं का वर्णन बड़े रोचक आख्यानों के द्वारा किया गया है जो क्रमशः जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय है। चेतना या आत्मा को प्रकाशों का प्रकाश ज्योतिषां ज्योतिः माना है। इसी तरह से उपनिषदों में चेतना के अन्नमय, प्राणमय, मनोमय विज्ञानयम

एवं आनन्दमय कोषों की चर्चा भी की गयी है। रानोड, 1971, माण्डूक्योपनिषद् 1973 सामान्यतः जब हम चेतना के विकास को मनुष्य के व्यक्तित्व के साथ जोड़कर समझने का प्रयास करते हैं या दोनों को सहगामी समझते हैं तो हम तेजी से बन्धन या अज्ञानता की तरह बढ़ते हैं। इसीलिए जहाँ चेतना एवं व्यक्तिगत सत्ता में सम्बन्ध स्थापित करना बन्धन का कारण है वहीं इस सम्बन्ध की वास्तविकता को जान लेना ही मोक्ष है। यही सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन का प्रयास भी है। इस प्रकार चेतना, आत्मा एवं शरीर के सम्बन्ध की वास्तविकता को समझ लेना ही ज्ञान, विद्या या मुक्ति है। सा विद्या या विमुक्तये।

भारतीय दर्शन में चेतना के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि किञ्चित् भिन्नताओं के साथ प्रायः सभी भारतीय चिन्तक इस बात पर एकमत हैं कि चेतना की एक निरपेक्ष, स्वतन्त्र एवं अद्वैत सत्ता है, जिसका स्वभाव स्वप्रकाशता या शुद्ध द्रष्टाभाव में निहित है। जो मूल रूप में उपनिषदों, सांख्य एवं वेदान्त से समर्थित है। अन्य किञ्चित् भारतीय चिन्तनक-यथा जैन, न्याय-वैशेषिक आदि जो आत्मा की अनेकता के समर्थक हैं वे भी अनेकता के कुछ कारण बताते हैं और ये कारण अद्वैत वेदान्त का मत जो उपनिषदों एवं सांख्य में समर्थित भी है, चेतना के सम्बन्ध में अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है।

सारांशः

हमारी वर्तमान शिक्षा का उद्देश्यः समाज एवं व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में निहित है जो राष्ट्रीय विकास की पूर्ववर्ती शर्त है। इसके लिए सामाजिक समरसता, एकता, करुणा, दया, क्षमा, स्वाध्याय, परहित जैसे मानवीय मूल्यों के स्थापना की आवश्यकता है जिनका वर्तमान में दिन प्रतिदिन क्षरण होता जा रहा है। इनकी स्थापना में चेतना का उपनिषदिक विचार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जो यह स्थापित करता है कि हम सभी की चेतना एक ही है जो हमारे अस्तित्व की बीज है जिसका वस्तुगत प्रत्यक्ष तो सम्भव नहीं, परन्तु हम उसका प्रतिक्षण अनुभव करते हैं। हमें अपने नैतिक आध्यात्मिक एवं मानवीय तथा राष्ट्रीय विकास के लिए इसे समझना होगा जो उपनिषदिक चिन्तन का प्राण है। मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति में निहित है, इसी अन्तिम लक्ष्य के लिए रास्ता दिखाने का प्रयास ही हमारी सम्पूर्ण शिक्षा का उद्देश्य है। उपनिषदों में प्रतिपादित चेतना सम्बन्धी उपर्युक्त चिन्तन मनुष्य जीवन के अन्तिम लक्ष्य एवं शिक्षा के इस उद्देश्य की प्राप्ति में निश्चित ही अत्यन्त सहायक है।

संदर्भ ग्रंथ

*आचार्य, शंकर : ब्रह्मसूत्र शंकर भाष्य, टीकाकार, सत्यानन्द सरस्वती, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 1988 *उपाध्याय, बलदेवः भारतीय दर्शन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1942 *ओड, लक्ष्मीकान्तः शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर *गौडपाद : दि आगम सूत्र अनुवाद-वी.एस.भट्टाचार्य मोतीलाल, बनारसीदास, नई दिल्ली *डायसन, पाल : वेदान्त दर्शन, अनुवाद-संगम लाल पाण्डेय सं. 2026 *दत्तात्रेय, रानाडेः उपनिषद दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण अनुवादी-रामानन्द तिवारी राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर सं. 1971 *दास गुप्ता, एस.एन. भारतीय दर्शन का इतिहास भाग-एक अनुवाद कैलाश नाथ शास्त्री एवं सुधीर कुमार, राजस्थानी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर *देवराज, नन्द किशोरः भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग सं. 1941 *माण्डूक्योपनिषदः गौडपादीय कारिका शंकर भाष्य सहित, गीता प्रेस गोरखपुर, सं. 1973 *राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन भाग 1 एवं भाग 2 अनुवाद-नन्द किशोर गोबिल राजपाल एण्ड संस, दिल्ली सं. 1995 *शर्मा, डॉ. चन्द्रधर : भारतीय दर्शन आलोचना एवं अनुशीलन मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली, 1991 एवं बौद्ध दर्शन और वेदान्त, विजय विभूति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1986